इकाई 3 . कालिदास- परिचय, कृतित्व

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य के इतिहास वर्णन क्रम से सम्बन्धित यह तीसरी इकाई है । इसके पूर्व की इकाईयों में आपने रामायण एवं महाभारत जैसे विशालकाय साहित्यिक ग्रन्थों का संक्षिप्त अध्ययन किया है । प्रस्तुत इकाई में परवर्ती कवियों की गणना श्रृंखला में प्रथम स्थान पर गिने जाने वाले कवि कालिदास का परिचय एवं उनके कृतियों का विस्तृत किन्तु संक्षिप्त वर्णन किया गया है।

महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के कविकुलगुरू के रूप में प्रतिष्ठित हैं । ये नाटक महाकाव्य तथा ज्योतिष परम्परा में भी निष्णात माने गयें है । इन्होंने कुल सात ग्रन्थों की रचना की है, जिनमें तीन महाकाव्य, तीन नाटक और एक ऋतुसंहार नाम का ग्रन्थ रचा था । इसके अतिरिक्त ज्योतिष शास्त्र से सम्बन्धित ज्योतिविदाभरणम् नाम का इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है । इन रचनाओं में जो वैशिष्ट्य है उसी के कारण वर्तमान में भी कालिदास की उतनी ही प्रतिष्ठा है जितनी पूर्व में थी ।

अत: इस इकाई के अध्ययन से आप कालिदास रचित ग्रन्थों के संक्षिप्त वर्णन के आधार पर उनकी नाटकीय तथा अन्य साहित्यिक समस्त शैलियों, वर्णन प्रकारों का समुचित प्रयोजन बता सकेंगे । साथ ही यह भी समझा सकेंगे कि मूल रूप से कालिदास किस रीति के समर्थक कवि थे

3.2 उद्देश्य

इस इकाई में वर्णित कालिदास का परिचय एवं उनके ग्रन्थों की विशेषताओं का अध्ययन कर लेने के पश्चात् आप यह समझ सकेंगे कि –

1. कालिदास और दीपशिखा कालिदास में क्या भेद है ।
2. कालिदास का परिचय और समय क्या है ।
3. मुख्य रूप से कालिदास को किस राजा से सम्बन्धित माना गया है ।
4. कालिदास के महाकाव्यों की क्या विशेषतायें है ।
5. नाटकों में कालिदास के नाटक श्रेष्ठ क्यों है ।
6. उपमा के लिये कालिदास क्यों प्रसिद्ध है ।

3.3 कालिदास का परिचय

कालिदास

कालिदास भारतीय तथा पश्चात्य दृष्टियों में संस्कृत के सर्वमान्य कवि माने जाते हैं। नाट्यकला की सुन्दरता निरखिये, काव्य की वर्णनछटा देखिये, गीतिकाव्य के सरस हृदयोद्गारों को पढिये, कालिदास की प्रतिभा सर्वातिशायिनी है। उनके काव्यों की जितनी ख्याति निश्चित है, उनकी जीवनी तथा काल-निरूपण उतना ही अनिश्चित है। कालिदास की जन्मभूमि के विषय में बंगाल तथा कश्मीर के नाम लिये जाते है परन्तु यह अभी तक

अनिर्णीत ही है। कवि ने उज्जयिनी के लिए विशेष पक्षपात दिखलाया है, जिससे यही इनकी जन्मभूमि प्रतीत होती है। मेघदूत (1/29) में यक्ष रास्ता टेढा होने पर भी 'श्रीविशाला' विशाला (उज्जयिनी) को देखने के लिये मेघ से आग्रह करता है। उज्जयिनी के विशाल महलों और रमणियों के कुटिल-कटाक्षों को देखने से यदि वह वन्चित रह गया तो उसका जीवन ही निष्फल है। कालिदास ने अवन्ती प्रदेश की भौगोलिक स्थिति का सूक्ष्म वर्णन मेघदूत में किया है- वहॉं की छोटी-छोटी नदियों का भी नाम – निर्देश किया है तथा वर्णन दिया है। उज्जयिनी के प्रति उनके विशेष पक्षपात तथा सूक्ष्म भौगोलिक परिचय के आधार पर यही कहा जा सकता है कि कालिदास वहीं के रहने वाले थे।

कालिदास नि:सन्देह शैव थे। मेरी दृष्टि में वे उज्जयिनी के विख्यात ज्योतिर्लिड्ग 'महाकाल' के उपासक थे। मेघदूत में महाकाल की उपासनाके प्रति उनका आग्रह इसका आधार माना जा सकता है। महाकालकी शोभा का वर्णन कर यक्ष मेघ से कहता है कि उज्जयिनी में तुम किसी समय चहुँचों, परन्तु सूर्य के अस्त होने तक तुम्हें वहॉं ठहराना होगा। प्रदोष-पूजा के अवसर पर तुम अपना स्निग्ध गम्भीर घोष करना जो महाकाल की पूजा में नगाड़े का काम करेगाऔर तुम्हें अशेष पुण्यों का भाजन बना देगा (मेघ0 श्लोक 35)। इतनाही नहीं, कालिदास मन्दिर में पूजार्थ नियत की गई देवदासियों से परिचय रखते हें। यह प्रथा दक्षिण के मन्दिरों में आज भी प्रचलित है, यद्यपि उत्तर भारत के मन्दिरों में यह विशेष रूप से नही दीख पड़ती। उज्जयिनी उदयन तथा वासवदत्ता के उदात्त प्रेम की क्रीडास्थली थी। फलत: कालिदास ने इस कथा से सम्बद्ध छोटी-छोटी धटनाओं तथा उनके नियत स्थानों का भी उल्लेख कर नगरी के प्रति पूर्ण पक्षपातप्रदर्शित क्रिया है, जो उसे कवि की जन्मभूमि होने का गौरव प्रदान करने में सचेष्ट है।

स्थितिकाल- भारतीय जन-श्रुति के आधारपर कालिदासराजा विक्रमादित्य के नव-रत्नों के मुखिया थे। कालिदास के ग्रन्थों से भी विक्रम के साथ रहने की बात सूचित होती है। विश्वविख्यात शकुन्तला का अभिनय किसी राजा की –सम्भवत: विक्रम कि – 'अभिरूपभुयिष्ठा' परिषद् में ही हुआ था। 'विक्रमोर्वशीय' में पुरूरवा के नामक होने पर भी विक्रम का नामोल्लेख नाटक के नाम में है तथा 'अनुत्सेक: खलु विक्रमालड्कार' आदि वाक्य इस सिद्धान्त की पुष्टिकर रहे है कि कालिदास का विक्रम से सम्बन्ध अवश्य था। 'रामचरित' महाकाव्य के 'ख्यातिकामपि कालिदासकवयो नीता: शकारतिना' आदि पद्यो से भी इसी सम्बन्ध की पुष्टि हो रही है। अत: एव जब तक इसके विरूद्ध कोई प्रमाण न मिले ,तब तक यह मानना अनुचित नहीं होगा कि कालिदास राजा विक्रम की सभा के रत्न थे।

कालिदास ने शुड्गवंशीय राजा अग्निमित्र को अपने 'मालविकाग्निमित्र' नाटक का नायक बनाया है। अत: वे उसके (विक्रम-पूर्व द्वितीय शतक के) अनन्तर होगे। इधर सप्तम् शताब्दी में हर्षवर्धन के सभा –कवि बाणभट्ट ने हर्षचरित में कालिदास की कविता की प्रशस्त प्रशंसाकी है। अत: कवि का समय विक्रमपूर्व द्वितीय शतक से लेकर विक्रम की सप्तम् शतक के बीच में कहीं होना चाहिए । कालिदास के समय विषय में प्रधानतया

तीन मत है-

पहला मत- कालिदास को षष्ठ शतक का बतलाता है।

दूसरा मत- गुप्तकाल में कालिदास की स्थिति मानता है।

तीसरा मत- विक्रम सं0 के आरम्भ में इनका समय बतलाता है।

षष्ठशतक में कालिदास - भारतीय इतिहास में विक्रम उपाधिवाले चार राजाओं का उल्लेख पाया जाता है, जिनके समसामयिक होने से कालिदास का भी समय भिन्न-भिन्न सदियों में माना गया है। डॉक्टर हार्नली का मत है कि यशोधर्मन् ने, जिसने कहरूर की लड़ाई में हूणवंश के प्रतापी राजा मिहिरकुल को बालादित्य नरसिंह गुप्त की सहायता से परास्त किया था, 'विक्रमादित्य' की उपाधि भी ग्रहण की थी। अपनी इस महत्वपूर्ण विजय के उपलक्ष्य में उसने नवीन संवत् चलाया, जो विक्रम के नाम से व्यवहृत हुआ, परन्तु इसे 600 वर्ष पूर्व , अर्थात् 58 ईस्वी की विजय-घटना की यादगार में उसने अपने नवीन संवत् के 600 वर्ष अर्थात् 58 ईस्वी पूर्व से स्थापित होने की बात प्रचारितकी विक्रम संवत् की यह नवीन कल्पना डॉक्टर फर्गुसन ने की थी । हार्नली ने इसका उपयोग कालिदास के समय-निरूपण के लिए किया। उसने दिखलाया है कि रघु का दिग्विजय यशोधर्मन् की राज्यसीमा से बिल्कुल मिलता-जुलता है। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री [2] ने अनेक कौतुकपूर्ण प्रमाणों से सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि कालिदास भारवि के अनन्तर छठी सदी में विद्यमान थे।

इस मत का खण्डन –परन्तु कालिदास को इतना पीछे मानना उचित नहीं प्रतीत होता है। हूणों को पराजित करने पर भी यशोधर्मन् 'शकाराति' - शकों का शत्रु नही कहा जा सकता। न उसके शिलालेखों से नवीन संवत् के स्थापना की घटना सच्ची प्रतीत होती है। विक्रम संवत् की स्थापना छठी सदी में यशोधर्मन् के द्वारा मानना ज्ञात इतिहास पर घोर अत्याचार करना है; क्योंकि 'मालव संवत्' के नाम से यह संवत् अति प्राचीन काल में भी प्रसिद्ध था। 473 ई0 के कुमारगुप्त की प्रशस्ति के कर्ता वत्सभट्टि कि रचना में ऋतुसंहार के कितने ही पद्यों की झलक दीख पड़ती है। ऐसी दशा में कालिदास को पॉचवीं सदी के अनन्तर मानना अनुचित है। अत: इस मत को प्रामाणिक मानकर कितने ही भारतीय तथा यूरोपीय विद्वानों ने गुप्त नरेशों के उन्नत समय में कालिदास की स्थिति बतलाई है।

गुप्तकाल में कालिदास- गुप्तकाल में कालिदास की स्थिति माननेवाले विद्वानों में भी कुछ –कुछ भेद दीख पड़ता है। पूना के प्रोफेसर के0बी0 पाठक की सम्मति में कालिदास स्कन्दगुप्त 'विक्रमादित्य' के समकालीन थे, परन्तु डॉक्टर रामकृष्ण भण्डारक, साहित्याचार्य पं0 रामावतार शर्मा तथा अधिकांश पश्चिमीविद्वान् गुप्तों में सबसे अधिक प्रभावशाली चन्द्रगुप्त द्वितीय को कालिदासका आश्रयदाता मानते हैं।

(क) पाठक ने काश्मीरी टीकाकार वल्लभदेव के निम्नलिखित श्लोक के पाठ को प्रामाणिक मानकर पूर्वोक्त सिद्धान्त निश्चित किया[2] (रघु0 4/67)

विनीताध्वश्रमास्तस्य सिन्धुतीरविचेश्टनैः।

दुधुवुर्वाजिनः स्कन्धॉल्लग्नकुड्कमकेसनान्।।

इस पद्य के 'सिन्धु' शब्द के स्थान पर वल्लभदेव ने 'वंक्ष् पाठ माना है। 'वंक्षू' शब्द पाठक की सम्मति में OXUS(आक्सस) शब्द का संस्कृतीकरण है। अत: इस पाठ को प्रामाणिक मानने से यह कहना पड़ता है कि रघु ने हूंणो को आक्सस नदी (जो पामीर से निकलकर अरब सागर में गिरती है) के किनारे उनके भारत आगमन के पहले ही हराया था। यह घटना 455 ई0 के पूर्व की हो सकती है; क्योंकि उस वर्ष स्कन्दगुप्त के प्रबल प्रताप के सामने हार मान भग्न-मनोरथ होकर हूंणों को लौटना पड़ा था। अत: रघुवंश को कालिदास की प्रथम रचना मानकर पाठक ने उन्हें स्कन्दगुप्त का समकालीन माना है। विजयचन्द्र मजुमदार ने कुछ अन्य प्रमाण देकर इन्हें कुमारगुप्त तथा स्कन्दगुप्त दोनों के समय में मानाहै।

(ख) पश्चिमी विद्वान् शकों को भारत से निकाल बाहर करने वाले, विक्रमादित्य उपाधि धारण करने वाले, चन्द्रगुप्त द्वितीय के राज्यकाल में (जब भारत में चारों ओर शान्ति विराजमान थी और जो भारतीय कलाकौशल के पुनरून्नति का काल माना जाता है) कालिदास को मानते हैं। रघुवंश के चतुर्थ सर्ग में वर्णित रघु का दिग्विजय समुद्रगुप्त की विजय से सर्वथा मिलता-जुलता है। रघुवंश में वर्णित शान्ति[3] का समुचित काल चन्द्रगुप्त का ही समय था। इसके सिवाय इन्दुमती –स्वयंवर में उपस्थित मगध राजा के लिए जो उपमा या विशेषण प्रयुक्त किये गये है उनसे भी 'चन्द्रगुप्त' नाम की ध्वनि निकलती है, परन्तु गुप्तकाल में कालिदास की स्थिति बताना ठीक नहीं, क्योंकि चन्द्रगुप्त द्वितीय ही प्रथम विक्रमादित्य नहीं थे। जब इनसे भी प्राचीन मालवा में राज्य करने वाले विक्रम का पता इतिहास से चलता है, तब कालिदास गुप्तकाल में कैसे माने जा सकते है ?

प्रथम शती में कालिदास- (क) ऐतिहासिक खोज से ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दी में शकों को परास्त करने वाले, विद्वानों को विपुल दान देने वाले उज्जयिनी- नरेश राजा विक्रमादित्य के अस्तित्व का पता चलताहै। राजा हाल की 'गाथासप्तशती' में (रचनाकाल प्रथम शताब्दी) 'विक्रमादित्य' नामक एक प्रतापी तथा उदार शासक का निर्देश है, जिसने शत्रुओं पर विजय पाने के उपलक्ष्य में भृत्यों को लाखों का उपहार दियाथा। जैन ग्रन्थों से इस बात की पर्याप्त पुष्टि होती है। मेरूतुड्गाचार्य विरचित 'पद्यावली' से पता चलता है कि उज्जयिनी के राजा गर्दभिल्ल के पुत्र विक्रमादित्य ने शकों से उज्जयिनी का राज्य लौटा लिया था। यह घटना महावीर-निर्वाणके470 वें वर्ष में (527-470=57 ई0 पूर्व) हुई थी। इसकी पुष्टि प्रबन्धकोश तथा शत्रुन्जयमहात्म्य से भी होती है।

प्राचीन काल में 'मालव' नामक गणों का विशेष प्रभुत्व था। ईस्वी पूर्व तृतीय शतक में इसने 'क्षुद्रक' गण के साथ सिकन्दर का सामना कियाथा, पर विशेष सहायता न मिलने से पराजित हो गया था। यही मालव जाति ग्रीक लोगों के सतत आक्रमण से पीडित होकर राजपूताने की ओर आई और मालवा में ईस्वी पूर्व प्रथम द्वितीय शताब्दी में अपना प्रभुत्व जमाया। यह गणराज्य था और विक्रमादित्य इसी गणतन्त्र के मुखिया थे। शकों के

आक्रमण को विफल बनाकर विक्रम ने 'शकारि' की उपाधि धारण की और अपने मालवगण को प्रतिष्ठित किया। इसलिए इस संवत् का 'मालवगण-स्थिति' नाम पड़ा था। गणराज्य में व्यक्ति की अपेक्षा समाज का विशेष महत्व होता है। अत: यह संवत् गणमुख्य के नाम पर ही अभिहित न होकर गण के नाम पर 'मालव-संवत्' कहलाता था। अत: ई0 पू0 प्रथम शतक में विक्रम नाम-धारी राजा या गणमुखिया का परिचय इतिहास से भली-भॉंति लगता है। इन्हीं की सभा में कालिदास की स्थिति मानना सर्वथा न्यायसंगत है।

निष्कर्ष – अपने आश्रयदाता 'विक्रम' की सूचना कालिदास ने अपने ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर दी है। विक्रमोर्वशीय त्रोटक के अभिधान में नायक के स्थान पर 'विक्रम' शब्द का प्रयोग विक्रम के साथ कालिदास का घनिष्ठ सम्बन्ध सूचित करता है। अभिज्ञानप्रस्तावना में रसभाव-विशेष –दीक्षा-गुरू विक्रमादित्य साहसाड्क नाम्ना निर्दिष्ट किये गये है तथा भरत-वाक्य में 'गणशतपरिवर्तैरेवमन्योन्यकृत्यै:' में राजनीतिक अर्थ में व्यवहृत 'गण' शब्द – गणराष्ट्र' का सूचक स्वीकृत किया गया है। प्राय: अभी तक विक्रमादित्य एकतान्त्रिक राजा ही समझे जाते रहे हैं, परन्तु ऊपर निर्दिष्ट हस्तलेख के प्रामाण्य पर वे गणराष्ट्र (मालव गणराष्ट्र) के गणमुख्य प्रतीत होते हैं। विक्रमादित्य उनका व्यक्तिगत अभिधान था (कथासरित्सागर का पोषक साक्ष्य है) तथा 'साहसाड्क' उनकी उपाधि थी। उन्होने शकों को उनके प्रथम बढ़ाव में पराजित कर इस क्रान्तिकारी घटनाके उपलक्ष्य में 'मालवगण-स्थिति' नामक संवत् का प्रवर्तन किया, जो आगे चलकर 'विक्रमसंवत्' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। गणराष्ट्र में व्यक्तिविशेष का प्राधान्य नहीं रहता। इसीलिए यह गण के नाम से प्रसिद्ध था। चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा समस्त गणराष्ट्र उच्छिन्न कर दिये गये; फलत: अष्टम -नवम शती में सारे देश में निरंकुश एकतन्त्र की स्थापना हो जाने पर गणराष्ट्र की कल्पना ही विलीन हो गई। तभी गणमुख्य का नाम इससे सम्बद्ध कर दिया गया है और यह संवत् 'विक्रम' के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

विक्रमादित्य के गुप्त सम्राट् होने के विरूद्ध निम्नलिखित कठोर आपत्तियॉं हैं-

(1) गुप्त सम्राटों का अपना वंशगत संवत् है, उनके किसी उत्कीर्ण लेख में मालव अथवा विक्रम संवत् का उल्लेख नहीं है। जब उन्होने ही विक्रम संवत् का प्रयोग नहीं किया, तब जनता उनके गौरव के अस्त होने पर उनके नाम से इसे 'विक्रम संवत् ' क्यों कहने लगेगी?

(2) गुप्त सम्राट पाटलिपुत्रनाथ थे, किन्तु विक्रमादित्य उज्जयिनीनाथ थे, अनुश्रुतियों के आधार पर ही नहीं प्रत्युत रघुवंश (6/26) के आधार पर भी। यहॉं इन्दुमती-स्वयंवर में अवन्तिनाथ को 'विक्रमादित्य' होने का गूढ संकेत विद्यमान है।

(3) उज्जयिनी के विक्रम का व्यक्तिगत अभिधान ही 'विक्रमादित्य' था , उपाधि नहीं। कथासरित्सागर में लिखा है कि उनके पिता ने जन्म -दिन को ही शिवजी के आदेशानुसार उनका नाम 'विक्रमादित्य' रखा, अभिषेक के समय की यह उपाधि नहीं है। इसके विरूद्ध किसी गुप्त सम्राट् का नाम विक्रमादित्य नहीं था। चन्द्रगुप्त द्वितीय और स्कन्दगुप्त के विरूद्ध क्रमश: 'विक्रमादित्य' तथा 'क्रमादित्य' (कहीं-कहीं विक्रमादित्य भी) थे। समुद्रगुप्त की

यह उपाधि नहीं थी। कुमारगुप्त की उपाधि थी ' महेन्द्रादित्य', कोई नाम नहीं था। उपाधि होने से पहिले यह आवश्यक है कि उस नाम का कोई पराक्रमी लोकप्रसिद्ध व्यक्ति रहा हो जिसके नाम का अनुकरण पिछले युग के लोग करते है। गुप्त राजाओं की 'विक्रमादित्य' उपाधि अपनी पूर्व किसी लोकख्यात व्यक्ति की सत्ता की परिचायिका है । अत: विक्रमादित्य की स्थिति प्रथम शती में गुप्तों से पूर्व मानना नितान्त समुचित है। इसी विक्रम की सभा के रत्न कालिदास थे।

(ख) बौद्ध कवि अश्वघोष का समय निश्चित है। कुषाण -नरेश कनिष्क के समकालीन होने से उनका समय ई0 सन् प्रथम शताब्दी का उत्तरार्ध है। इनके तथा कालिदास के काव्यों में अत्यधिक साम्य है। कथानक की सृष्टि, वर्णन की शैली, अलंकारों का प्रयोग, छन्दों का चुनाव –आदि अनेक विषयों में कालिदास का प्रभाव अश्वघोष पर पड़ा है । अश्वघोष प्रधानत: सर्वास्तिवादी दार्शनिकथे। काव्य की ओर उनकी अभिरूचि का होना तथा उसे धर्म प्रचार का साधन मानना काव्यकला के उत्कर्ष का द्योतक है (सौन्दर्यनन्द 18/63) । और यह उत्कर्ष कालिदास के प्रभाव का ही फल है। बुद्ध चरित में अश्वघोष में कालिदास के बहुत से श्लोकों का अनुकरण किया है। रघुवंश के सातवें सर्ग में (श्लोक 5-15) कालिदास ने स्वयंवर से लौटने पर अज को देखने के लिए आने वाली उत्सुक स्त्रियोंका बड़ा ही अभिराम वर्णन किया है। अश्वघोष ने बुद्धचरित (तृतीय सर्ग, 13-24 पद्य) में ठीक ऐसे ही प्रसंग का वर्णन किया है। कुमारसम्भव मे भी ये ही पद्य मिलते हैं। यदि कालिदास ने इसे अश्वघोष के अनुकरण पर लिखा होता, तो वे दो बार इसका प्रदर्शन कर अपना ऋण नितान्त अभिव्यक्त नहीं करते, उसे छिपाने का प्रयत्न करते । कालिदास की भाव-सुन्दरता अश्वघोष के द्वारा सुरक्षित न रह सकी। तुलना करने से कालिदास का समय अश्वघोष से प्राचीन प्रतीत होता है। अत: कालिदास का समय ईस्वी पूर्व प्रथम शतक में ही मानना युक्तियुक्त है।

(ग) शाकुन्तल में सूचित सामाजिक तथा आर्थिक दशा का अनुशीलन सूचित करता है कि कालिदास बौद्ध धर्म से प्रभावित उस युग के कवि थे जब हिन्दू देवी -देवताओं के विषय में श्रद्धाविहीन विचार प्रचलित थे। कालिदास ने अभिज्ञान-शाकुन्तलम् की नान्दी में भगवान् शिव की अष्टमूर्तियों का वर्णन किया है। इस नान्दी में 'प्रात्यक्षभि:' शब्द का प्रयोग कर कवि ने तत्कालिन देवता –विषयक अविश्वास को दूर करने का प्रयत्न किया है। जिस शिव की अष्टमूर्तियों का हमें प्रत्यक्ष दर्शन हो रहा है- जिनका साक्षात्कार हमें अपनी ऑखों से हो रहा है, उन देवता के विषय में अश्रद्धा कैसे टिक सकती है? अविश्वास कैसे रह सकता है? इसी प्रकार षष्ठ अंक में कालिदास ने कर्तव्य-कर्म होने के कारण यज्ञयागादि का विधान ब्राह्मण के लिए आवश्यक बतलाया है। बौद्धों ने हिंसापरक होने के कारण यज्ञो की भरपेट निन्दा की, परन्तु शकुन्तला में एक पात्र कहता है कि क्या यज्ञों में पशु मारने वाले क्षेत्रिय का हृदय दयालु नहीं होता? कुल-परम्परागत धर्म का परित्याग क्या कभी श्लाघनीय है? अतएव यज्ञों का अनुष्ठान सर्वदा श्रेयस्कर है; परन्तु उसके हिंसापरक होने पर भी

याज्ञिक ब्राह्मणों का हृदय कोमल होता है-

सहजं किल यद् विनिन्दितं न खलु तत् कर्म विवर्जनीयकम्।
पशुमारण-कर्मदारूण: अनुकम्पामृदुरेव श्रोत्रिय: ।।

यहाँ कवि ने बौद्ध धर्म के कारण यज्ञों के विषय में होने वाली निन्दा या अश्रद्धा को दूर करने का उद्योग किया है। अत: कालिदास का जन्म उस समय में हुआ था, जब बौद्ध धर्म के प्रति अश्रद्धा बढ़ती जा रही थी तथा ब्राह्मण धर्म का अभ्युदय हो रहा था। यह समय ब्राह्मणवंशी शुंगनरेशो (द्वितीय शतक विक्रम पूर्व) के कुछ ही पीछे होना चाहिये। अत: विक्रम संवत् के प्रथम शतक में कालिदास को मानना सर्वथा न्यायसंगत प्रतीत होता है।

(घ) कालिदास को प्रथम शताब्दी में रखने के लिए अन्य भी प्रमाण उपस्थित किये जा सकते हैं-

(1) कालिदास ने रघुवंश के षष्ठ सर्ग (श्लोक 36) में 'अवन्तिनाथ' का वर्णन करते समय 'विक्रमादित्य' विरूद का संकेत किया है। कथासरित्सागर के अनुसार विक्रमादित्य मालवगण के संस्थापक, काव्यकला के प्रेमी, शैव थे। कालिदास के ग्रन्थों से भी उनके शैव होने का संकेत मिलता है। फलत: उनके विक्रमादित्य के सभापण्डितहोने की अधिक सम्भावना है, न कि वैष्णव मतावलम्बी परमभागवत गुप्तनरेशों की सभा में।

(2) रघुवंश के षष्ठ सर्ग में इन्दुमती के स्वयंवर के प्रसङ्ग में पांडय नरेश का वर्णन किया गया है (श्लोक 59-64)। चतुर्थ शती में पाण्डवों का राज्य समाप्त हो गया था, परन्तु प्रथम शती में उनका राज्य विद्यमान था। कालिदास ने पाण्डव नरेश की 'उरगपुर' राजधानी बतलाया है, जो 'उरियाउर' का संस्कृत नाम है। पाण्डव नरेशों की यही राजधानी थी।

3.4 कृतित्व

काव्यग्रन्थ

कालिदास की सच्ची रचनाओं का निर्णय करना आलोचकों के लिए एक दुष्कर कार्य है, क्योंकि कालिदास की काव्य-जगत् में ख्याति होने पर अवान्तरकालीन बहुत से कवियों ने 'कालिदास' का प्रसिद्ध अभिधान धारण कर अपने व्यक्तित्व को छिपा रखा। कम से कम राजशेखर (10 शतक) ने तीन कालिदासों की सत्ता का पूर्ण संकेत किया है। एक तो परम्परा की अविच्छिन्नता और दूसरे अनेक कालिदासों की सत्ता- दोनों ने मिलकर इस समस्या को जटिल तथा अमीमांस्य बना रखा है।

ऋतुसंहार

'ऋतुसंहार' कालिदास की प्रथम काव्यकृति है। विद्वानों की दृष्टि में बालकवि कालिदास ने काव्यकला का आरम्भ इसी ऋतु-वर्णन-परक लघुकाव्य से किया। छ: सर्गो में विभक्त यह काव्य ग्रीष्म से आरम्भ कर वसन्त तक छहों ऋतुओं का बड़ा ही स्वाभावि, अकृत्रिम तथा सरल वर्णन प्रस्तुत करता है, परन्तु इसे कालिदास की कमनीय शैली या वाग्वैदग्धी

का परिचय मिलता है, न इसमें बाल-रचना की पुष्टि में ही कोई प्रमाण मिलता है। भारतीय दृष्टि से ऋतुओं का वर्णन रूढिगत तथा सर्वथा सामान्जस्यपूर्ण है। अलंकार ग्रन्थों में उद्धरण का अभाव भी उक्त सन्देह की पुष्टि-सा करता प्रतीत होता है।

कुमारसम्भव - कालिदास की सच्ची नि:सन्दिग्ध रचना है। इसमें कवि ने कुमार कार्तिकेय के जन्म के वर्णन का संकल्प किया था, परन्तु यह महाकाव्य अधूरा ही हैं। इसके वर्तमान 17 सर्गो में से आदि के सात सर्ग तो कालिदास की लेखनी के चमत्कार हैं ही। अष्टम सर्ग भी उनका ही नि:संशय निर्माण है। आलड्कारिकों तथा सुक्तिसंग्रहों ने इन्हीं सर्गो में से पद्यों को उद्धृत किया है। कालिदासीय कविता के प्रवीण पारखी मल्लिनाथ ने इतने ही सर्गो पर अपनी 'संजीवनी' लिखी। इन आदिमअष्ट सर्गो में विषय की दृष्टि से पूर्ण ऐक्य है। कविता का चमत्कार सहृदयों के लिए नितान्त हृदयावर्जक है। 'जगत:पितरौ' शिव-पार्वती जैसे दिव्य दाम्पत्य के रूप तथा स्नेह का वर्णन नितान्त औचित्यपूर्ण तथा ओजस्वी है। केवल अष्टम सर्ग का रतिवर्णन आलड्कारिकों के तीव्र कटाक्ष का पात्र बना है। पंचम सर्ग में पार्वती की कठोर तपश्चर्या का वर्णन जितना ओजपूर्ण, उदात्त तथा संश्लिष्ट है उतना ही तृतीय सर्ग में शिवजी की समाधिका वर्णन भी है। 9से लेकर 17 सर्ग किसी साधारण कवि के द्वारा लिखित प्रक्षेपमात्र है।

मेघदूत – यह कालिदास की अनुपम प्रतिभा का विलास है। वियोगविधुरा कान्ता के पास यक्ष का मेघ के द्वारा प्रणय-सन्देश भेजना मौलिक कल्पना है। सम्भव है यह हनुमान् को दूत बनाकर भेजने की रामायणीय कथा अथवा हंसदूत की महाभारतीय कथा के द्वारा संकेतित किया गया है, परन्तु इसका सांविधानक तथा विषयोपन्यास कवि की मौलिक सूझ के परिणाम हैं। इसकी लोकप्रियता तथा व्यापकता का निदर्शनविपुल टीका-सम्पत्ति (लगभग 50 टीकाओं) से तो लगता ही है; साथ ही साथ तिब्बती तथा सिंघली भाषा में इसके अनुवाद से यह विशेषत: पुष्ट होती है। 'मेघदूत' को आदर्श मानकर संस्कृत में निबद्ध एक विपुल काव्यमाला है, जो 'सन्देश-काव्य' के नाम से विख्यात है। पूर्वमेघ में कवि ने रामगिरि से अलका तक मार्ग के वर्णनावसर पर समस्त भारतवर्ष की प्राकृतिक सुषमा का अभिराम उपन्यास किया है। यह बाह्यप्रकृति के सौन्दर्यय तथा कामनीयता का उज्ज्वल प्रदर्शन है तो उत्तरमेघ मानव-हृदय के सौन्दर्य तथा अभिरामता का विमल चित्रण है यक्ष का प्रेम-सन्देश, उस, के कोमल हृदय के स्वाभाविक स्नेह का तथा नैसर्गिक सहानुभूति का एक मनोरम प्रतीक है और इस उदात्त प्रेम का अभिव्यंजक, काव्य सुषमा तथा भावसौष्ठव से मण्डित यह ग्रन्थ रस का अक्षय स्रोत है जिसकी भावधारा सूखने की अपेक्षा प्रतिदिन आनन्दातिरेक से वृद्धिगतही होती जा रही है।

रघुवंश - भारतीय आलोचक रघुवंश को कालिदास का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ मानते है और इसीलिए कालिदास के लिए ही 'रघुकार' (रघुवशं का रचयिता) अभिधान का प्रयोग किया गया है। ग्रन्थ की लोकप्रियता तथा व्यापकता का परिचय विभिन्न काल में निर्मित 40 टीकाओं के अस्तित्व से भी भली-भॉंति मिल सकता है। रघु के जन्म की पूर्व पीठिका

से ही इस काव्य का आरम्भ होता है। दिलीप के गोचारण से रघु का जन्म होता है (द्वितीय तथा तृतीय सर्ग) , जो अपने अदम्य पराक्रम से पूरे भारतवर्ष के ऊपर दिग्विजय करते हैं (चतुर्थ सर्ग) और अपनी अद्भुत दानशीलता दिखलाकर लोगों को चकित कर देते है (पंचम सर्ग) । इसके अनन्तर तीन सर्गो में इन्दुमती का स्वयंवर, अन्य समवेत राजाओं को परास्त कर रघुपत्र अज का इन्दुमती से विवाह तथा कोमल माला के गिरने से इन्दुमती का मरण तथा अज का करूण विलाप क्रमशः वर्णित हैं। दसवें सर्ग से लेकर 15 वें सर्ग तक रामचरित का विस्तृत वर्णन है। यहॉं कालिदास ने जमकर रामचन्द्र के चरित का वैशिष्टय बड़ी ही सुन्दरता से प्रदर्शित किया है। त्रयोदश सर्ग में पुष्पकारूढ राम के द्वारा भारतवर्ष के स्थलों का रूचिर वर्णन कालिदास की प्रतिभा का विलास है। चतुर्दश सर्ग सीता के चरित की सुषमा से आलोकित है । राम के द्वारा परित्यक्ता गर्भ- भरालसा जनकनन्दिनी के प्रणय-सन्देह में जो आत्मगौरव, जो स्नेह भरा हुआ है वह पतिव्रताके चरित का उत्कर्ष है । अन्तिम कतिपय सर्गो में कालिदास नाना राजाओं के चरित को सरसरी तौर से निरखते चले गये हैं,परन्तु अन्तिम 19 वें सर्ग में कामुक अग्निवर्ण का चित्रण बड़ी ही मार्मिकता के साथ कवि ने किया है। देखने में रघुवंश अधूरा-सा दीखता है, परन्तु कालिदास ने यहॉं प्रभुशक्ति की कल्पना में अपने विचारों को पुर्णरूपेण अभिव्यक्त कर दिया है। प्रकृति-रंजन के कारण राज्य की समृद्धि होती है तथा प्रकृतिहिंसन के कारण राज्य का सर्वनाश होता है- यह उपदेश बड़े ही अच्छे ढंग से रघुवंश के अनुशीलन से प्रकट हो रहा है।

समीक्षण

महाकवि कालिदास की कविता देववाणी का श्रृंगार है। माधुर्य का निवेश, प्रसाद की स्निग्धता , पदों की सरस शय्या, अर्थ का सौष्ठव , अलंकारों का मंजुल प्रयोग –कमनीय काव्य के समस्त लक्षण कालिदास की कविता में अपना अस्तित्व धारण किये हुए हैं। कालिदास भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि कवि हैं, जिनके पात्र भारतीयता की भव्य मूर्ति हैं। जीवन की विविध परिस्थितियों के मार्मिक रूप को ग्रहण करने की क्षमता जिस कवि में विशेष रूप से होगी, जनता का वही सच्चा रूप उनके काव्यों में झॉंकता है तथा उनके नाटकों में अपना अभिनय दिखाता है। कालिदास की कविता का प्रधान गुण है वर्ण्य-विषय तथा वर्णन-प्रकार में मंजुल सामन्जस्य । कालिदास चुने हुए थोड़े शब्दों में जिन भावों की अभिव्यक्ति कर रहे हैं उन्हें दूसरा कवि विस्तार से लिखकर भी प्रकट नहीं कर सकता। वह जिसे छू देते हैं वह सोना बन जाता है। औचित्य के तो वे प्रवीण मर्मज्ञ हैं। जिन भावों का जिन शब्दों के द्वारा प्रकटन कलात्मक तथा रूचिर होगा, वे उन भावों को उन्ही शब्दों में प्रकट कर अपनी भावुकता का परिचय देते हैं। कालिदास के काव्यों में हृदय –पक्ष का प्राधान्य है। कवि मानव हृदय की परिवर्तनशील वृत्तियों को समझने तथा उन्हें अभिव्यक्त करने में अद्भुत चातुर्य रखता है। संसार का अनुभव उसे गहरा तथा जर्मन महाकवि गेटे ने एक स्वर से कालिदास के भावों की उदारता तथा

महनीयता की प्रशंसा की है। कालिदास प्रतिभासम्पन्न स्वतन्त्र कवि हैं, जिन्होंने अपने काव्यों की शैली का रूप-निरूपण स्वयं किया। रसमयी पद्धति अथवा 'सुकुमार मार्ग' के कवि ने अपने भावों की तीव्रता तथा उदात्तता के संचार के लिए अलंकारों का भी प्रयोग बड़े ही औचित्य से किया। 'उपमा कालिदासस्य' का भारतीय आभाणक वस्तुत: यथार्थ प्रतीत होता है। उनकी उपमायें लोक तथा प्रकृति के मार्मिक स्थलों से संगृहीत की गयी हैं तथा विषय को उज्जवल करने और काव्यसुषमा की वृद्धि में नितान्त समर्थ हैं। अन्तर्जगत् तथा बहिर्जगत् से चुने जाने के कारण इन उपमाओं में एक विलक्षण चमत्कार है।

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न –

1. कालिदास किस रीति के प्रयोक्ता है।

क. गौणी ख. पांचाली ग. वैदर्भी घ. लाटी

2. कालिदास ने कितने महाकाव्यों की रचना की।

क. 4 ख. 3 ग. **5** घ. 7

3. कालिदास ने कितने नाटकों की रचना की।

क. **3** ख. 5 ग. **7** घ. 8

4. ऋतुसंहार किसकी रचना है।

क. माघ ख. भास ग. कालिदास घ. भारवि

5. कालिदास का समय प्रथम शताब्दी कौन सा ग्रन्थ प्रमाणित करता है।

क. गाथासप्तशती ख. कथासरित्सागर ग. वृहत्कथामंजरी घ. कोई नहीं

6. कनिष्क किस वंश का शासक था।

क. गुप्त ख. चोल ग. कुषाण घ. भद्र

7. कुमारसम्भव महाकाव्य में कितने सर्ग हैं।

क. 4 ख. 13 ग. 17 घ. 19

8. कालिदास के मेघदूत में किसे दूत बनाया गया है।

क. यक्ष ख. मेघ ग. सेवक घ. कोई नहीं

9. दिलीप की गो सेवा का वर्णन किस ग्रन्थ में है।

क. रघुवंश ख. कुमारसम्भव ग. शाकुन्तलम घ. गीतगोविन्द

10. रघुवंश महाकाव्य में कितने सर्ग है –

क. 17 ख. 18 ग. 19 घ. 20

3.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि कालिदास अपने पाण्डित्य के कारण ही नहीं बल्कि वर्णन की गम्भीरता के कारण कवियों के बीच में सर्वाधिक प्रतिष्ठित है। परम्परा में यह मान्य है

कि महाकवि ने ऋतुसंहार नामक काव्य की रचना सबसे पहले की । इसी में उनका कोमल प्राकृतिक होना प्रतिभासित होता है। इसके बाद ही उन्होंने रघुवंश, कुमारसम्भव एवं मेघदूत की रचना की। जिसमें दो महाकाव्य हैं और एक गीतिकाव्य है। ये वैदर्भी रीति के सफल प्रयोक्ता हैं । उपमा कालिदास के काव्यों एवं नाटकों का मुकुट है वस्तुत: उन्होंने दर्शन से लेकर समस्त बौद्धिक पराकाष्ठाओं के दृष्टि से अपनी रचना में सभी आकर्षण उत्पन्न किया है । फिर भी नितान्त साहित्यिक होकर वे श्रृंगार परक, प्रकृतिपरक और उपमा परक वर्णनों पर अत्यधिक विश्वस्त दिखायी देते है। उन्होंने अभिनेय वस्तु को सजीवता के साथ चित्रित करनें में कोई कोर कसार नहीं रखी है। रसमय और सुकुमार, अलंकारों के सुन्दर प्रयोग, सामासिक पदों में सरसता इत्यादि कालिदास की महनीय विशेषता है। अल्प शब्दों में विहंगम भावों की अभिव्यक्ति इनका प्रधान गुण है । अत: इस इकाई के अध्ययन के बाद आप कालिदास का परिचय, समय और इनके समय निर्णय में विविध मतों का अवलोकन करते हुये महाकवि की विविध वर्णन शैली को समझा सकेंगे।

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. **ग. वैदर्भी** 2. **ख. 3** क. 3 4. **ग. कालिदास** 5. क. **गाथासप्तशती** 6. **ग. कुषाण** 7. **ग. 17** 8. ख. **मेघ** 9. क. **रघुवंश** 10. **ग. 19**

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संस्कृत शास्त्रों का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय
2. पुराण विमर्श – आचार्य बलदेव उपाध्याय- चौखम्भा सुरभारती
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ वाचस्पति गैरोला – चौखम्भा प्रकाशन

3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. महाकवि कालिदास का जीवन परिचय लिखिये।
2. विभिन्न मतों के अनुसार कालिदास का काल निर्णय कीजिये।
3. कालिदास की रचनाओं पर एक निबन्ध लिखिये।

इकाई 4. कालिदास की काव्य-नाट्यकला, एवम् उपमा कालिदासस्य

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य के इतिहास वर्णन क्रम से सम्बन्धित यह चौथी इकाई है। इसके पूर्व की इकाईयों में आपने रामायण एवं महाभारत जैसे विशालकाय साहित्यिक ग्रन्थों तथा कालिदास से ही सम्बन्धित तथ्यों का संक्षिप्त अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में परवर्ती कवियों की गणना श्रृंखला में प्रथम स्थान पर गिने जाने वाले कवि कालिदास की नाट्य कला एवं उनके उपमा प्रयोग से सम्बन्धित वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के कविकुलगुरू के रूप में प्रतिष्ठित हैं। ये नाटक महाकाव्य तथा ज्योतिष परम्परा में भी निष्णात माने गयें है। इन्होंने कुल सात ग्रन्थों की रचना की है, जिनमें तीन महाकाव्य, तीन नाटक और एक ऋतुसंहार नाम का ग्रन्थ रचा था। इसके अतिरिक्त ज्योतिष शास्त्र से सम्बन्धित ज्योतिविदाभरणम् नाम का इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इन रचनाओं में जो वैशिष्ट्य है उसी के कारण वर्तमान में भी कालिदास की उतनी ही प्रतिष्ठा है जितनी पूर्व में थी। कालिदास महाकाव्यों के रचना में तो प्रवीण हैं ही बल्कि वे नाटकीयता में भी सर्वाधिक निपुण कवि है। उनका उपमा प्रयोग संस्कृत साहित्य में एक कीर्तिमान के रूप में स्थापित है।

अत: इस इकाई के अध्ययन से आप कालिदास रचित ग्रन्थों के संक्षिप्त वर्णन के आधार पर उनकी नाटकीय तथा अन्य साहित्यिक समस्त शैलियों, वर्णन प्रकारों का समुचित प्रयोजन बता सकेंगे। साथ ही यह भी समझा सकेंगे कि मूल रूप से कालिदास किस रीति के समर्थक कवि थे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई में वर्णित कालिदास की नाट्यकला एवं उनके ग्रन्थों में उपमा प्रयोग की विशेषताओं का अध्ययन कर लेने के पश्चात् आप यह समझा सकेंगे कि –

1. कालिदास के कितने नाटक है ।
2. कालिदास के नाटकों में किस प्रकार की कथा वस्तु का प्रणयन किया गया है ।
3. मुख्य रूप से कालिदास किस शैली के कवि हैं ।
4. कालिदास के महाकाव्यों की क्या विशेषतायें हैं।
5. नाटकों में कालिदास के नाटक श्रेष्ठ क्यों है।
6. उपमा के लिये कालिदास क्यों प्रसिद्ध है।

4.3 वर्ण्य विषय

4.3.1 उपमा कालिदासस्य

काव्य में अलंकार-प्रयोग के विषय में ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्धन ने एक बड़ी

रहस्यमयी उक्ति प्रस्तुत की है-

रसाक्षिप्ततया यस्य बन्धः शब्दक्रियों भवेत्।
अपृथग्-यत्ननिर्वर्त्यः सोऽलङ्कारो ध्वनौ मतः ।।

रस के द्वारा आक्षिप्त होने के कारण जिसका बन्ध या निर्माण शक्य होता है और जिसकी सिद्धि में किसी प्रकार के पृथक् प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होती,वही सच्चा अलंकार है- ध्वनिवादियों का यही मत है। प्रथम होती है रस की अनुभूति और तदनन्तर होती है उसकी अलंकृत अभिव्यक्ति। रसानुभूति तथा शब्दाभिव्यक्ति - दोनों एक ही प्रयास के परिणित फल हैं। कोई कलाकार जिस चित्तप्रयास द्वारा रस-विधारण करता है उसी चित्तप्रयास द्वारा अलंकारादि के माध्यम से रसप्रस्फुटन करता है; उसके लिए उसे किसी प्रकार के पृथक् प्रयास करने की जरूरत ही नहीं होती । रससंवेग द्वारा ही अलंकार के स्वत: प्रकाशन का यह सिद्धान्त ध्वनिवादियों को ही मान्य नहीं है, प्रत्युत प्रख्यात आलोचक क्रोचे भी इससे पूर्णतया सहमत हैं । चित्त की सहजानुभूति (इन्टयूशन) एवं अभिव्यन्जना (एक्सद्रप्रेशन)- इन दो वस्तुओं को वे दो प्रक्रियाओं से उत्पन्न नहीं मानते। उनका यह दृढ विश्वास है कि कला की अभिव्यन्जना की सम्भावना बीज-रूप में हृदय की रसानुभूति में ही निहित रहती है; जैसे- एक विराट वृक्ष की शाखा-प्रशाखायें ,किसलय-पल्लव, फूल-फल आदि की रेखाओं की प्रकाशन-संभावना एक छोटे से बीज में। साहित्य के रस एवं साहित्य की भाषा में अद्वय योग रहता है, अभिव्यक्त अलंकार-भाषा का यह समस्त सौन्दर्य-कटककुण्डलावदिवतु कहीं बाहर से जोड़ा हुआ नहीं रहता, प्रत्युत् वह काव्यपुरूष का स्वाभाविक देह –धर्म होता है। अभिनव गुप्त ने भी स्पष्ट ही कहा है- 'न तेषां बहिरङ्गत्वं रसाभिव्यक्तौ'। इस विषय में महाकवि कालिदास भी अद्वयवादी थे:-

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ।।

वाक् तथा अर्थ का – काव्य की अन्तर्निहित भाववस्तु एवं उसके अभिव्यन्जक शब्द का परस्पर नित्य सम्बन्ध है, जैसे विश्वसृष्टि के आदि माता-पिता पार्वती-परमेश्वर का त्रिगुणात्मिका शक्ति ही विशुद्ध चिन्मय शिव की विश्व में अभिव्यक्ति का कारण बनती है। शिव के आश्रयविना शक्ति की लीला नहीं, शक्ति के विना शिव का कोई अस्तित्व ही नहीं; वह शवमात्र होताहै। साहित्य के क्षेत्र में भी भावरूप महेश्वर एवं शब्दरूपा पार्वती- दोनों ही एक दूसरे के आश्रित हैं। महाकवि कालिदास की उपमा (या अलंकार) के प्रयोग के अवसर पर इस तथ्य का अनुशीलन नितान्त आवश्यक है कि रसानुभति की समग्रता को वर्ण, चित्र तथा संगीत में जो भाषा जितना अधिक मूर्त कर सकेगी, वह भाषा उतनी ही सुन्दर एवं मधुर होगी।

कालिदास अपनी उपमा के द्वारा देवता तथा मानव दोनों के गौरव को प्रतिष्ठित करते हैं। समाधि में निरत भूतभावन शंकर की उपमा द्वारा जिस अपूर्व स्तब्धता का परिचय दिया है उसका सौन्दर्य नितान्त अवलोकनीय है (कुमारसम्भव 3/48)-

अवृष्टिसंरभमिवाम्बुवाहम् अपामिवाधारमनुत्तरड्.गम् ।
अन्तश्चराणां मरूतां निरोधाद् निवापनिष्कम्पमिव प्रदीपम् ।।

योगेश्वर महादेव शरीरस्थ समस्त वायुओं को निबद्ध कर पर्यड्.कबन्ध में स्थिर अचंचल भाव से बैठे हैं, जैसे वृष्टि के संरम्भ से हीन अम्बुवाह मेघ हो (जल को धारण जलराशि का आधारभूत समुद्र जैसे तरंगहीन अचंचल हो; 'अपामिवाधार' शब्द की यही ध्वनि है) तथा निवातनिष्कम्प प्रदीप हो। यहाँ तीनों प्राकृतिक उपमानों के द्वारा कालिदास योगिराज की अचंचल स्थिरता की अभिव्यन्जना कर उनके गौरव की एक रेखा खींचते हुये प्रतीत होते हैं। रघुवंश (3/2) में कालिदास ने गर्भवती सुदक्षिणा का बड़ा सुन्दर चित्र उपमा के द्वारा खींचा है-

शरीरसादादसमग्रभूषणा मुखेन साऽलक्ष्यत लोध्रपाण्डुना।
तनुप्रकाशेन विचेयतारका प्रभातकल्पा शशिनेव शर्वरी ।।

आसन्नप्रसवा सुदक्षिण मानों प्रभातकल्पा रजनी हो। रजनी दिन को प्रकाश देने वाले सूर्य का प्रसव करती है, वैसे ही रानी वंशकर्ता उज्जवलमूर्ति रघु को प्रसव करने जा रही है। सूर्यरूपी पुत्र को गर्भ में धारण करनेवाली आसन्नप्रसवा विराट् रजनी की महिमामयी मूर्ति होती है, सुदक्षिणा की मूर्ति में भी वह गौरव प्रस्फुटित हो रहा है। शरीर की कृशता के कारण हीरे, जवाहिरों के भूषण स्वयं खिसक पड़े हैं; जैसे रजनी में टिमटिमाते तारे स्वयं खिसक जाते हैं और दो चार ही बचे रहते हैं। लाध्र के समान ईषत्-पीला मुख पीले पड़ जानेवाले चन्द्रमा के समान प्रकाशहीन हो गया है। गर्भिणी के स्वभाविक चित्रण के साथ ही प्रभातप्राय निशा का कितना समुचित वर्णन हमारे नेत्रों के सामने उपस्थित हो जाता है।

कालिदास की उपमाओं की रसात्मिकता तथा रसपेशलता नितान्त मर्मस्पर्शी है। औचित्य तथा सन्दर्भ को शोभन बनाने की कला उनमें अपूर्व है। तपस्या के लिए आभूषणों को छोड़कर केवल वल्कल धारण करने वाली पार्वती चन्द्र तथा ताराओं से मण्डित होनेवाली अरूणोदय से युक्त रजनी के समान बतलाई गई है (कुमार0 5/44)। स्तनों के भार से किंचित् झुकी हुई नवीन लाल पल्लवों से मण्डित संचारिणी लता के समान प्रतीत होती है-

पर्याप्त-पुष्पस्तबकावनम्रा संचारिणी पल्लविनी लतेव।

स्वयंवर में उपस्थित भूपालों को छोड़कर जब इन्दुमती आगे बढ़ जाती है, तब वे राजमार्ग पर दीपशिखा के द्वारा छोड़े गये महलों के समान प्रतीत होते हैं। यहाँ राजाओं की विषण्णता तथा उदासी की अभिव्यक्ति इस उपमा के द्वाराबड़ी सुन्दरता से की गई है-

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्र-मार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपाल: ।।

इसी उपमा-प्रयोग के सौन्दर्य के कारण यह महाकवि'दीपशिखा कालिदास' नाम से कविगोष्ठी में प्रसिद्ध है। कालिदासीय उपमा की यह भूयसी विशिष्टता है कि वह 'स्थानीयरन्जना' (लोकल कलरिंग) से रंजित है और इससे श्रोता के चक्षु: पटल के सामने समग्र चित्र को प्रस्तुत कर देती है। परास्त किये जाने पर पुन: प्रतिष्ठित किये गये वंगीय नरेश

रघु के चरण-कमल के ऊपर नम्र होकर उन्हें फलों से समृद्ध बनाते हैं, जिस प्रकार उस देश के धान के पौधे (रघु0 4/37)। कलिंग-नरेश के मस्तक पर तीक्ष्ण प्रताप के रखने वाले रघु की समता गंभीरवेदी हाथी के मस्तक पर तीक्ष्ण अंकुश रखने वाले महाव्रत से की गई है (रघु04/39)। प्राग्ज्योतिषपुर (आसाम) के नरेश रघु के आगमन पर उसी प्रकार झुक जाते हैं जिस प्रकार हाथियों के बॉधने के कारण कालागुरू के पेड़ झुक जाते हैं (रघु0 4/81) इन समस्त उपमाओं में 'स्थानीय रंजन' का आश्चर्यजनक चमत्कार है।

प्रकृति से गृहीत उपमाओं में एक विलक्षण आनन्द है। राक्षसके चंगुल से बचने पर बदहोश उर्वशी धीरे-धीरे होश में आ रही है। इसकी समता के लिए कालिदास चन्द्रमा के उदय होने पर अन्धकार से छोड़ी जाती हुई (मुच्यमाना) रजनी,रात्रिकाल में धूमराशि से विरहित होने वाली अग्नि की ज्वाला , बरसात में तट के गिरने के कारण कलुषित होकर धीरे-धीरे प्रसन्न-सलिला होने वाली गंगा के साथ देकर पाठकों के सामने तीन सुन्दर दृश्य को एक साथ उपस्थित कर देते हैं। ये तीनों उपमायें औचित्यमण्डित होने से नितान्त रसाभिव्यन्जक हैं (विक्रमोर्वशीय1/9) –

आविर्भूते शशिनि तमसा मुच्यमानेव रात्रि-
नैशस्यार्चिर्हुतभुज इव छिन्नभूयिष्ठधूमा।
मोहेनान्तर्वरतनुरियं लक्ष्यते मुक्तकल्पा
गंगा रोध:पतनकलुषा गृह्णतीव प्रसादम्॥

पात्र-चित्रण

कालिदास के पात्र जीवनी शक्ति से सम्पन्न जीते-जागते प्राणी हैं। उनकी शकुन्तला प्रकृति की कन्या,आश्रम की निसर्ग बालिका है, जिसके जीवन को बाह्य प्रकृति ने अपने प्रभाव से कोमल तथा स्निग्ध बनाया है। हिमालय की पुत्री पार्वती तपस्या तथा पातिव्रत का अपूर्व प्रतीक है, जिसके कठोर तपश्चरण के आगे ऋषिजन भी अपना माथा टेकते है। धीरता की मूर्तिधारिणी, चपल प्रेम की प्रतिमा मालविका, उन्मत्त प्रेम की अधिकारिणी उर्वशी, पारस्परिक ईर्ष्या तथा प्रणयमान की प्रतिनिधि इरावती –संस्कृत-साहित्य के अविस्मरणीय स्त्री-पात्र हैं। आदर्श पात्रों के सर्जन में रघुवंश अद्वितीय है। देवता ब्रह्मण में भक्ति, गुरूवाक्य में अटल विश्वास, मातृरूपिणी पयस्विनी की परिचर्या, अतिथि की इष्टपूर्ति के लिए धरिणीधर राजा की व्याकुलता, लोकरंजन के निमित्त तथा अपने कुल को निष्कलंक रखने के लिए नरपति के द्वारा अपनी प्राणोपमा धर्मपत्नी का निर्वासन-कालिदासीय आदर्श सृष्टि के कतिपय दृष्टान्त हैं। कालिदास रमणी-रूप के चित्रण में ही समर्थ नहीं है; प्रत्युत नारी के स्वाभिमान तथा उदात्त रूप के प्रदर्शन में भी कृतकार्य है।

रधुवंश के चतुर्दश सर्ग(61-67 श्लोक) में चित्रित, राजाराम के द्वारा परित्यक्त, जनक-नन्दिनी जानकी का चित्र तथा उनका राम को भेजा गया संदेश कितना भावपूर्ण, गम्भीर तथा मर्मस्पर्शी है। राम को 'राजा' शब्द के द्वारा अभिहित करना विशुद्ध तथा पवित्र

चरित्र धर्मपत्नी के परित्याग के अनौचित्य का मार्मिक अभिव्यन्जक है (रघु0 14/21)-

वाच्यस्त्वया मद्वचनात् स राजा व ह्नौ विशुद्धामपि यत् समक्षम्।
मां लोकवादश्रवणादहासी: श्रुतस्य किं तत् सदृशं कुलस्य ।।

सीता के चरित्र की उदारताका परिचय इसी घटना से लग सकता है कि इतनी विषम परिस्थिति में पड़ने पर भी वह राम के लिए एक भी कुशब्द का प्रयोग नहीं करती, बल्कि अपने ही भाग्य को कोसती हैं तथा अपनी ही निन्दा बारम्बार करती हैं। पुरूष पात्रों का चित्रण भी उतनी ही स्वाभाविक तथा भावपूर्ण है। गुरू की आज्ञा से नन्दिनी का सेवक दिलीप चरित्र में जितना सुन्दर है, वरतन्तु की इच्छापूर्ति करने वाला वीर रघु उतना ही श्लाघनीय है। रामचन्द्र का चरित्र इस महाकवि ने बड़ी कोमल तूलिका से चित्रित किया है । राम प्रजारंजक हैं और साथ ही साथ मानव भी हैं। वै देही की निन्दा सुनकर राम के हृदय के विदरण की समता आग में तपे हुए अयोघन द्वारा आहत लोहे के साथ देकर कवि ने राम के हृदय की कठोरता तथा कोमलता दोनों की मार्मिक अभिव्क्ति एक साथ देकर कवि ने राम के हृदय की कठोरता तथा कोमलता दोनों की मार्मिक अभिव्यक्ति एक साथ की है (रघु0 14/33)।

राम का हृदय लोहे के समान कठोर, अथ च तप्त होने पर कोमल है। अकीर्त्ति की उपमा अयोघन (लोहे का घन) के साथ देकर कवि उसकी एकान्त कठोरता की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट कर रहा है। राम का स्वाभिमानी हृदय कहीं व्यक्त होता है (14/41), तो कहीं उनकी मानवता राजभाव के ऊपर झलकती है (14/84)। लक्ष्मण के लौटने पर सीता का सन्देश सुनाने पर राम की ऑंखों में ऑंसु छलकने लगते हैं, यह राजभाव के ऊपर मानवता की विजय है (रघु0 14/84)—

बभूव राम: सहसा सवाष्पस्तुषारवर्षीव सहस्य-चन्द:।
कौलीनभीतेन गृहान्निरस्ता न तेन वैदेहसुता मनस्त: ।।

प्रकृति-वर्णन

कालिदास प्रकृति देवी के प्रवीण पुरोहित थे। उनकी सूक्ष्मदृष्टि ने प्रकृति के सूक्ष्म रहस्यों को सावधानता से हृदयगम किया था। उनके प्राकृतिक वर्णन इतने सजीव हैं कि वर्णित वस्तु हमारे नेत्रों के सामने नाच उठती है। बाह्य प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण करना तथा उसका मार्मिक अंश ग्रहण करना कालिदास की महती विशेषता है। मनुष्य तथा प्रकृति-दोनों का मंजुल सम्पर्क तथा अद्भुत एकरसता दिखाकर कवि ने प्रकृति के भीतर स्फुरित होने वाले हृदय को पहचाना है। भारतीय प्राकृतिक वर्णनों में एक विचित्रता है। पाश्चात्य कवियों के वर्णन प्राय: आवरणहीन होते हैं, परन्तु संस्कृत कवियों के वर्णन अलंकृत होते हैं- ये महाकवि प्रकृति को सुन्दर अलंकारों से सजाकर पाठकों के सामने लाते हैं। कालिदास के वर्णन नितान्त सूक्ष्म, सुन्दर तथा संश्लिष्ट रूप में होते है।

मेघदूत भारतीय कवि की अद्भुत प्रतिभा के द्वारा चित्रित भारतश्री का एक नितान्त सरस चित्रण है। 'ऋतुहार' में समस्त ऋतुएँ अपने विशिष्ट रूप में प्रस्तुत होकर पाठकों का

मनोरंजन करती हैं। रघुवंश के प्रथम सर्ग (49-53 श्लोक) में तपोवन का तथा त्रयोदश में त्रिवेणी का (54-57 श्लोक) सुन्दर वर्णन कल्पना के साथ निरीक्षण शक्ति का मंजुल सामन्जस्य है। कालिदास की निरीक्षण शक्ति अत्यन्त सूक्ष्म तथा पैनी है। उनका प्राकृतिक-वर्णन वैज्ञानिक तथा प्रतिभामण्डित है। इसकेरमणीय उदाहरण सर्वत्र दीख पड़ते हैं। पर्वत के झरनों पर जब दिन के समय सूर्य की किरणें पड़ती हैं तब उनमें इन्द्रधनुष चमकने लगता है, परन्तु सन्ध्या के समय सूर्य के पश्चिम ओर लटक जाने पर उनमें इन्द्रधनुष नहीं दिखलाई पड़ते। इस वैज्ञानिक तथ्य तथा निरीक्ष-चातुरी का प्रत्यक्ष वर्णन कालिदास ने इस पद्य में किया है (कुमार08/31)—

सीकर-व्यतिकरं मरीचिभिर्दुरयत्यवनते विवस्वति।
इन्द्रचापपरिवेषशून्यतां निर्क्तरास्वत पितुर्व्रजन्त्यमी ।।

किन्तु झरनों में इन्द्र धनुष के न दिखलाई पड़ने पर भी तालाबों के जल में लटकते हुए सूर्य की समतल कान्ति पड़ने से ऐसा जान पड़ता है मानो उनके ऊपर सोने का पुल बना हो (कुमार0 8/34)—

पश्य पश्चिम-दिगन्तलग्बिना निर्मितं मितकथे विवस्वता।
लब्धया प्रतिमया सरोम्भसां तापनीयमिव सेतु-बन्धनम् ।।

ये उक्तियॉं रूढि का अनुसरण करने वाले कवि की नही हो सकती, वरन् ये उक्तियॉं उस कवि की हैं जो मुग्ध दृष्टि से प्रकृति की शोभा देखते हुए सब कुछ भूल जाता है। इस तथ्य का प्रत्यक्ष दृष्टान्त हिमालय का वर्णन है। संस्कृत कवियों में कालिदास को हिमालय सबसे अधिक प्यारा था और गाढ़ परिचय होने से उनके वर्णन नितान्त तथ्य- मण्डित, वैज्ञानिक तथा शोभन हैं। वृष्टि से उद्वेलित ऋषिजनोंका धूपवाले शिखर का आश्रय लेना, हाथियों के द्वारा विघटित सरल द्रुमों(चीड़ के पेड़) से बहनेवाले दूध का हवा के झोंके से सर्वत्र फैलना, जलवृष्टि का करका के रूप में परिवर्तन होना-आदि हिमालय प्रदेश की भौतिक विशेषताएँ कवि की सूक्ष्म अवलोकन-शक्ति के जागरूक दृष्टान्त हैं।

कालिदास के प्रकृति –वर्णन में अनेक वैशिष्टय हैं - कवि मान-सौन्दर्य की तीव्रता तथा यथार्थता के अभिव्यंजन के निमित्त प्रकृति का आश्रय लेता है, तो कहीं वह प्रकृति के ऊपर मानव भावों तथा व्यापारों का ललित आरोप करता है। कहीं वह प्रकृति और मानव के बीच परस्पर गाढ़ मैत्री, सहज सहानुभूति तथा रमणीय रागात्मक वृत्ति का सम्बन्ध जोड़ता है, तो कहीं प्रकृति को भगवान् की ललित लीला का निकेतन मानकर आनन्द से विभोर हो जाता है। नि:सन्देह कालिदास प्रकृति के अन्त: स्थल के सूक्ष्म पारखी महाकवि हैं, जिनकी दृष्टि प्रकृति के सौम्य-रूप , माधुर्यमय प्रवृत्ति तथा स्निग्ध सौन्दर्य के ऊपर रीझती है तथा उग्रतं और भीषणता से सदा पराड़मुख रहती है।

कालिदास की राष्ट्रमंगल भावना

भारतवर्ष एक अखण्ड राष्ट्र है। इस विशाल विस्तृत देश के नाना प्रान्तों में भाषा तथा स्थानीय वेश-भूषा की इतनी विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है कि वाह्यदृष्टि से देखने वालों

को विश्वास नहीं होता कि देश में समरसता का साम्राज्य है, अखण्डता का बोलबाला है; परन्तु बाहरी आवरण को हटाकर निरखनेवालों की दृष्टि में इसकी सांस्कृतिक एकता तथा अभिन्नता का परिचय पद-पद पर मिलता है । कालिदास भारतीय संस्कृतिक के हृदय थे। उनकी कविता में हमारी सभ्यता झलकती है; उनके नाटकों में हमारी संस्कृति विश्व के रंगमंच पर अपना भव्य रूप दिखलाती है। उनकी वाणी राष्ट्रीय भाव तथा भावना से ओतप्रोत है। इतिहास साक्षी है, इसी महाकवि ने आज से डेढ सौ वर्ष पहले, जब भारत पाश्चात्य जगत् के सम्पर्क में आया, तब इस देश के सरस हृदय,कोमल वाणी तथा उदात्त भावनाका प्रथम परिचय पाश्चात्य संसार को दिया। आज भी हम इस महाकवि की वाणी से स्फूर्ति तथा प्रेरणा पाकर अपने समाज को सुधार सकते हैं तथा अपना वैयक्तिक कल्याण सम्पन्न कर सकते हैं।

कालिदास ने अखण्ड भारतीय राष्ट्र की स्तुति अभिज्ञान-शाकुन्तल की नांदी में की है। कविवर ने शंकर की अष्टमूर्तियों का उल्लेख किया है। कुमारसम्भव (6/26) में भी इन्ही मूर्तियों का विस्तार कर जगत् के रक्षण-कार्य का स्पष्ट संकेत है। महादेव की आठ मूर्तियॉं ये हैं – सूर्य, चन्द्र, यजमान, पृवी ,जल, अग्नि , वायु तथा आकाश। ये समस्त मूर्तियॉं प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर होती हैं। अत: इन प्रत्यक्ष मूर्तियों को धारण करने वाले इस जगत् के चेतन नियामक की सत्ता में किसी को सन्देह करने का अवकाश नहीं है। कालिदास वैदिक धर्म तथा संस्कृति के प्रतिनिधि ठहरे । 'प्रत्यक्षाभि: प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीश:' – इन शब्दों में वैदिक कवि ने निरीश्वरवादी बौद्धौं को कड़ी चुनौती दी है। भगवान् की प्रत्यक्ष दृश्य-मूर्तियों में अविश्वास रखना किसी भी चक्षुष्मान् को शोभा नही देता। इतना ही नहीं, इस श्लोक में भारत की एकता तथा अखण्डता की ओर भी संकेत किया गया है। शिव की इन मूर्तियों के तीर्थ इस देश के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक फैले हुए है। सूर्य प्रत्यक्ष देवता है। चन्द्रमूर्ति की प्रतिष्ठा दो तीर्थो में है- एक है भारत के पश्चिम में काठियावाड़ का सोमनाथ- मन्दिर और दूसरा है भारत के पूरब में बंगाल का चन्द्रनाथ क्षेत्र । सोमनाथ का प्रसिद्ध तीर्थ प्रभासक्षेत्र में है और चन्द्रनाथ का मन्दिर चटगॉंव से लगभग चालीस मील उत्तर पूर्व में एक पर्वत पर स्थित है। नेपाल के पशुपतिनाथ यजमान मूर्ति के तीर्थ हैं। पन्च तत्वों की सुचक मूर्तियों के क्षेत्र दक्षिण –भारत में विद्यमानहैं। क्षितिलिंग शिवकांची में एकाम्रेश्वरनाम के रूप में हैं। जललिंग जम्बुकेश्वर के शिव-मन्दिर में मिलता है। तेलोलिंग अरूणाचल पर है, वायुलिंग कालहस्नीश्वर के नाम से विख्यात है, जो दक्षिण के तिरूपति बालाजीके कुछ ही उत्तर में है। आकाशलिंग चिदम्बर के मन्दिरमें है। 'चिदम्बर' का अर्थ ही है 'चिदाकाश'। इसी से मूल-मन्दिर में कोई मूर्ति नहीं है , आकाश स्वयं मूर्तिहीन जो ठहरा।

इस प्रकार भगवान् चन्द्रमौलीश्वर की ये आठों मूर्तियॉं भारत के सबसे उत्तरीय भाग नेपाल से लेकर दक्षिण चिदम्बर तक तथा काठियावाड़ से लेकर बंगाल तक फैली हुई हैं और उनकी उपासना का अर्थ है समग्र भारतवर्ष की आध्यात्मिक एकता की उपासना। महाकवि

ने राष्ट्रीय एकता की ओर इस श्लोक में गूढ़ रूप से संकेत किया है।

राष्ट्र का मंगल किस प्रकार सिद्ध हो सकता है ? क्षात्रबल तथा ब्राह्मतेज के परस्पर सहयोग से ही किसी देश का वास्तव में कल्याण हो सकता है। ब्राह्मण देश के मस्तिष्क है, उन्हीं के विचार तथा मार्ग पर समग्र देश आगे बढ़ता है। सम्राट् त्रैवृष्ण त्र्यरूण और महर्षि वृश-जान के वैदिक आख्यान का यही रहस्य है। कालिदास ने इस तत्व का स्पष्टीकरण् बड़े सुन्दर शब्दों में किया है (रघुवंश 8/4)

स बभूव दुरासदः परैर्गुरूणाथर्वविदा कृतक्रिया।
पवनाग्निसमागमो ह्ययं सहितं ब्रह्मयदस्त्रतेजसा ।।

अथर्ववेद के जाननेवाले गुरू वसिष्ठ के द्वारा संस्कार कर दिये जाने पर वह अज शत्रुओं के लिये दुर्द्धर्ष हो गया। ठीक ही है, अस्त्र –तेज से युक्त ब्रह्म-तेज आग और हवा के संयोग के समान प्रदीप्त हो उठता है।

भारतीय राजाओं का जीवन परोपकार की एक दीर्घ परम्परा होता है। कालिदास ने महाराज अज के वर्णन में कहा है कि उसका धन ही केवल दूसरों के उपहार के लिए नहीं था, प्रत्युत् उसके समस्त सद्गुण दूसरों का कल्याण –सम्पादन करते थे; उसका बल पीड़ितो के भय तथा दु:ख का निवारण करता था और इसका शास्त्राध्यन विद्वानों के सत्कार एवं आदर करने में लगाया गया था(रघु0 8/3) —

बलमार्तभयोपशान्तये विदुषां सत्कृतये बहु श्रुतम्।
वसु तस्य विभोर्न केवलं गुणवत्तापि परप्रयोजना ।।

राजा की सार्थकता प्रजापालन से है। 'राजा प्रकृतिरन्जनात्'- हमारी राजनीति का आदर्श तत्व है। प्रकृति का अनुरन्जन ही हमारे शासकों का प्रधान लक्ष्य होता था। और प्रजा का कर्तव्य था राजा की भक्ति के साथ अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की रक्षा। समाज वर्णाश्रम धर्म पर प्रतिष्ठित होकर ही श्रेय:साधन कर सकता है, कालिदास की यह स्पष्ट सम्मति प्रतीत होतीहै। भारत का वास्तव कल्याण दो ही वस्तुओं से हो सकता है- त्याग से और तपोवन से। जिस दिन त्याग का महत्व कम हो जाएगा तथा तपोवन के प्रति हमारी आस्था नष्ट हो जायगी, उसी दिन न हम भारतीय रहेंगे और न हमारी सभ्यता भारतीय रहेगी। आर्य संस्कृति की मूल –प्रतिष्ठा इन्हीं दो पीठों पर है। भारतीय राष्ट्र के संरक्षक रघु के जन्म का कारण नगर से बहुत दूर, वसिष्ठ के पावन आश्रम में निवास तथा गोचारण है। रघु का उदय गोमाता के वरदान का उज्जवल प्रभाव है। इसी प्रकार दुष्यन्त-पुत्र भारत का जन्म और पोषण हेमकूट पर्वत पर मारीचाश्रम में होता है। भारतीय राष्ट्र के संचालन नेता पावन तपोवन और पवित्र त्याग के वायुमण्डल में पले है और बड़े हुए हैं। हमारे राजाओं ने जिस दिन कालिदास के इस सन्देश को भुला दिया, उस दिन उनका अध:पतन आरम्भ हो गया। रघु की तेजस्विता तथा अग्निवर्ण की स्त्रैणता का कितना सजीव चित्र कालिदास ने खींचा है। रघु था त्याग का उज्जवल अवतार और अग्निवर्ण था स्वार्थ - परायणता की सजीव मूर्ति । रघु की वीरता तथा उदारता भारतीय नरेश का आदर्श है और रघु हिन्दू राजा का प्रतीक

हैं, तो अग्निवर्ण पतित-पातकी भूपालों का प्रतिनिधि है। राजभक्त प्रजा प्रात:काल अपने राजा का मुख देखकर सुप्रभात मनाने आती थी; परन्तु अग्नि-वर्ण मन्त्रियों के लाखों सिफारिस करने पर यदि कभी दर्शन देता था तो खिड़की से लटकाकर अपने केवल पैर का। प्रजा मुख देखने के लिये आती थी, पर पैर का दर्शन पाकर लौटती थी। वाह री विडम्बना ! (रघु0 19/7)-

गौरवाद्यदपि जातु मन्त्रिणां दर्शनं प्रकृतिकांक्षितं ददौ।
तद् गवाक्षविवरावलम्बिना केवलेन चरणेन कल्पितम्।।

अग्निवर्ण पार्थिव भोगविलास का दास था। उसे फल भी अच्छा ही मिला-राष्ट्र तथा देश का सत्यानाश । अग्निवर्ण के दुश्चरित्र का कुफल कवि ने बड़े ही प्रभावशाली शब्दों में अभिव्यक्त किया है। इस चित्र को देखकर हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

कालिदास की दृष्टि में : गीता का आदर्श

वैदिक धर्म तथा दर्शन ने इस जगत् के उदय, संचालन तथा विनाश के निमित्त विश्व के अन्तर में एक विशाल दैवी शक्ति को अंगीकार किया है। विना उस शक्तिमान् की इच्छा के जगत् का छोटा से छोटा कार्य भी संपादित नहीं हो सकता। कालिदास ने उस शक्तिमान् को 'शिव' के रूप में ग्रहण किया है। 'शिव' जगत् के मंगलकारक तत्व का सामान्य अभिधान है। विश्व का प्रत्येक कण उनकी सत्ता की सूचना देता है। वैदिक धर्म अन्य धर्मो की अपेक्षा उदात्त है और कालिदासके ग्रन्थों में इसका उदात्ततम रूप दृष्टिगोचरहोता है। कालिदास शंकर के उपासक होकर भी विष्णु तथा ब्रह्मा में उसी प्रकार श्रद्धा और आदर रखते हैं। वे क्षुद्, संकीर्णसाम्प्रदायिकता से कोसों दूर थे। भगवान् की मूर्ति एक ही है जो गुणों की विषमता के कारण ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर का रूप धारण करती है। तत्व वस्तुत: एक ही है; त्रिविध रूप उपाधिजन्य है। इन त्रिदेवों में ज्येष्ठ और कनिष्ठ का भाव सामान्य है। कभी हरि शंकर के आदि में विद्यमान रहते हैं, तो कभी हर हरि के आदि में और कभी ब्रह्मा हरि और हर दोनों के आदि में स्थित हैं। ऐसी दशा में किसी एक देवता को बड़ा मानना तथा दूसरों को छोटा बतलाना नितान्त अनुचित एवं तर्कहीन है। कालिदास का कथन संशयहीन है (कुमारसम्भव 7/44) –

एकैव मूर्तिर्बिभिदे त्रिधा सा सामान्यमेषां प्रथमावरत्वम्।
विष्णोर्हरस्तस्य हरि:कदाचिद् वेधास्तयोस्तावपि धातुराद्यौ ।।

आकाश से गिरनेवाला वर्षाकालीन जल एकरस ही होता है, परन्तु जिन स्थानों पर वह गिरता है उन स्थानों की विशेषता के कारण नाना रसों को प्राप्त करता है। ब्रह्म-तत्व भी ठीक इसी प्रकार समरस है। उसमें किसी प्रकार का विकार नहीं है। परन्तु सत्व, रज तथा तम के सम्पर्क में आकर नाना कार्यो के निर्वाह के निमित्त वह विष्णु, ब्रह्मा तथा शंकर नाम धारण करता है (रघु0 10/17)। ब्रह्मतत्व अमेय है –उसके मान का पता नहीं चलता। कालिदास ने इसी लिये ब्रह्म की समता समुद्रसे की है। समुद्र दश दिशाओं को व्याप्त किये हुए है और भिन्न-भिन्न समय में नाना अवस्थाओं को प्राप्त कर

विद्यमान रहता है। अत: उसके रूप तथा प्रमाण का पता नहीं चलता। भगवान् विष्णु ने भी नाना स्थावर-जङ्.गम का रूप धारण कर अपनी महिमा से समग्र विश्व को व्याप्त कर रखा है। इनके भी रूप का पता हमारी बुद्धि से नहीं चलता। कि उनका स्वरूप किस प्रकार का है (ईदृक्तया) तथा वह कितना बड़ा है (इयत्तया)(रघु013/5)-

ता तामवस्थां प्रतिपद्यमानं स्थितं दश व्याप्य दिशो महिम्ना।
विष्णोरिवास्यानवधारणीयमीदृक्तया रूपमियत्तया वा ।।

भगवान् नित्य परिपूर्ण हैं। अत: उनके लिए कोई भी वस्तु अनवाप्त (अप्राप्त) तथा प्राप्तव्य नहीं है। जो व्यक्ति पूर्ण नहीं होता वह नाना प्रकार की वस्तुओं की कामना किया करता है, परन्तु जो स्वयं 'सर्वसम:' ''सर्वरस:' है उसके लिए किसी वस्तु की कामना की अपेक्षा ही नहीं रहती। ऐसी दशा में जन्म-कर्म का क्या कारण है ? क्या कारण है कि भगवान् इस भूतल पर जन्म ग्रहण करते हैं तथा नाना प्रकार के कर्मो का सम्पादन करते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर कालिदास के शब्दों में 'लोकानुग्रह' है। कल्याण के निमित्त उनकी समग्र प्रवृत्तियॉं परार्थ ही होती है (रघु0 10/31)—

अनवाप्तमवाप्तव्यं न ते किञ्चन विद्यते।
लोकनुग्रह एवैको हेतुस्ते जन्मकर्मणो:।।

कालिदास इस श्लोक के भाव तथा शब्द दोनों के लिए ऋणी है (गीता 3/12)—

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन।
नानावाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ।।

कालिदास के धार्मिक तथा दार्शनिक विचारों पर गीता का प्रचुरप्रभाव दृष्टिगत होता है। गीता का 'कर्मयोग' कालिदास को सर्वथा मान्य है। इस संसार से आत्यन्तिक निवृत्ति के लिये कालिदास द्वारा निर्दिष्ट मार्ग यह है (रघु0 10/27)—

त्वय्यावेशितचित्तानां त्वत्समर्पित-कर्मणाम्।
गतिस्त्वं वीतरागाणामभूय:-संनिवृत्तये ।।

इस सारगर्भित श्लोक को हम कालिदास के दर्शन की 'चतु:सूत्री' मान सकते है। इसके चारों चरण नवीन तत्व की व्याख्या करते हैं। भगवान् की प्राप्ति के तीन साधन हैं—(1) भगवान् में चित्त को लगाना , (2) भगवान् को सब कर्मो को समर्पण करना, (3) संसार के सब विषयों से राग से रहित होना। चित्तावेश का प्रधान उपाय है- योग का अभ्यास। योग-विधि के द्वारा चित्त को एकाग्र कर भगवान् में लगाया जा सकता है। कालिदास 'योग' के बड़े भारी पक्षपाती हैं। उनका कहना है (कुमार0 6/77)—

योगिनो यं विचिन्वन्ति क्षेत्राभ्यन्तरवर्तिनम्।
अनावृत्ति-भयं यस्य पदमाहुर्मनीषिण:।।

रघुवंश के अष्टम सर्ग के आरम्भ में रघु को योग-विधि के द्वारा मोक्ष प्राप्ति का वृत्तान्त प्रामाणिक रूप से वर्णितहै। समग्र कर्मो को भगवान् को समर्पण करना चाहिये। कर्मो में फलरूपी विषदन्त हैं जिसे तोड़ना नितान्त आवश्यक है। समस्त कर्म बन्धन रूप है।

जब कर्मो का फल भगवान् को समर्पण किया जाता है तब वे बन्धनरूप नहीं होते, प्रत्युत वे मोक्ष के सहायक बन जाते हैं। भगवतगीता की यह सूक्ति इसी अर्थ की पोषिका है – रागादि तभी तक स्तेन (चोर) हैं, जो चित्त को चुराकर इधर-उधर अस्त -व्यस्त किया करते हैं; गृह तभी तक कारागार है- बन्धनभूत है, मोह तभी तक पैर का बन्धन है, जब तक हे कृष्ण ! तुम्हारे सेवक हम नहीं बन जाते भगवान् के भक्त सेवक बनते ही यह दशा बदल जाती है। उसी प्रकार कर्म बन्धन जरूर हैं, परन्तु ज्यों ही उनका फल भगवान् के चरणों में अर्पित कर दिया जाता है, त्यों ही उनका दोष दूर हो जाता है। बन्धन होने की अपेक्षा वे मोक्ष में सहायक होते हैं। श्रीमद्भागवत का महनीय श्लोक यह है-

तावद् रागादय: स्तेनास्तावत् कारागृहं गृहम्।
तावन्मोहोऽङ्.घ्रनिगडो यावत् कृष्ण न ते जाना: ।।

तीसरी बात है रागहीनता, वैराग्य। संसार के विषयों में प्रेम-भाव नितान्त बन्धन है। वैराग्य अत्यन्त आवश्यक है। 'अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोध:' – पतञ्जलि ने चित्तनिरोध के उपायों में वैराग्य को विशेष महत्व दिया है।

इन उपायों से भगवान् की प्राप्ति होती है, जिससे सद्य: मोक्ष का उदय होता है। वह महत्वपूर्ण श्लोक गीता के निम्नलिखित श्लोक (17-65) पर अवलम्बित है-

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरू।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि में ।।

कालिदास पक्के अद्वैतवादी थे। शास्त्र तथा आगमों ने सिद्धि के भिन्न-भिन्न मार्ग बतलाये हैं। परन्तु इन मार्गो का चरम लक्ष्य भगवान् ही हैं। जिस प्रकार गंगाजी के प्रवाह भिन्न-भिन्न मार्गो से प्रवाहित होते हैं, परन्तु अपने अन्तिम स्थान समुद्र में ही वे गिरते हैं तथा अपना जीवन सफल बनाते हैं (रघु0 10/26)-

बहुधाप्यगमैर्भिन्ना: पन्थान: सिद्धिहेतव:।
त्वय्येव निपतन्त्योघा जाह्नवीया इवार्णवे ।।

भारतीय धर्म तथा दर्शनका अन्तिम लक्ष्य है- भिन्नता में अभिन्नता की अनुभूति, नाना में एकता का साक्षात्कार। कालिदास ने अपने श्लोक में इसी उदात्त भावना को स्थान दिया है। इस श्लोक के भाव को जितना ही कार्य में परिणत किया जायगा उतना ही मंगल होगा और पारस्परिक विरोध तथा संघर्ष का अन्त होगा।

कालिदास : शिवसन्देश

राष्ट्रमंगल तथा विश्वकल्याण का मन्जुल सामरस्य कालिदास के काव्यों में दृष्टिगत होता है। इस महाकवि की वाणी में जिस प्रकार आदिकवि वाल्मीकि की रसयवी धारा प्रवाहित होती है उसी प्रकार उपनिषदों तथा गीता का अध्यात्म भी मंजुलरूप में अपनी अभिव्यक्ति पा रहा है। भारतीय ऋषियों के द्वारा प्रचारित चिरन्तन तथ्यों को मनोभिराम शब्दों में भारतीय जनता के हृदय में उतारने का काम कालिदास की कविता ने सुचारू रूप से किया। कविता

का प्रणयन मानव-हृदयकी शाश्वत प्रवृत्तियों तथा भावों का आलम्बन करके किया गया है। यही कारण है कि इसके भीतर ऐसी उदात्त भावना विद्यमान है जो भारतीयों को ही नहीं, प्रत्युत् मानवमात्र को सदा प्रेरणा तथा स्फूर्ति देती रहेगी। इस भारतीय कवि की वाणी में इतना रस भरा हुआ है, इतना जोश भरा हुआ है कि दो सहस्र वर्षो के दीर्घ काल ने भी उसमें किसी प्रकार का फीकापन नहीं उत्पन्न किया। उसकी मधुरिमा आज भी उसी प्रकार भावुकों के हृदय को रसमय करती है जिस प्रकार उसने अपनी उत्पत्ति के प्रथम क्षण में किया था। वैदिक धर्म तथा संस्कृति का भव्य रूप इन काव्यों में मधुर शब्दों में उपदिष्ट हैं। आज के युग में कालिदास का सन्देश बड़ा ही भव्य तथा ग्राह्यहै।

मानवजीवन में नैराश्यवाद के लिये स्थान नहीं है। जो लोग इसे मायिक बतला कर नि:सार तथा व्यर्थ मानते है उनका कथन किसी प्रकार प्रामाणिक नहीं है। जो जीवन हम बिता रहे है तथा जिससे हम अपना अभ्युदय प्राप्त कर सकते हैं उसे सारहीन क्यों मानें ? कालिदास का कहना है कि देहधारियों के लिये मरण ही प्रकृति है। जीवन तो विकृति-मात्र है। जन्तु श्वास लेता हुआ यदि एक क्षण के लिये भी जीवित है तो यह उसके लिये लाभ है (रघु0 8/87)—

मरणं प्रकृति: शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधै।
क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन् यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ ।।

इस जीवन को महान् लाभ मानना चाहिये तथा इसे सफल बनाने के लिए अर्थ, धर्म तथा काम का सामन्जस्य उपस्थित करना चाहिये। इस त्रिवर्ग में धर्म ही सर्वश्रेष्ठ है (त्रिवर्गसार: प्रतिभाति भामिनि- कुमार0 5/38), परन्तु अर्थ और काम अपनी स्वतन्त्रता और सत्ता बनाये रखने के लिए धर्म से विरोध करते है। धर्म को दबाकर अर्थ अपनी प्रबलता चाहता है। और धर्म को ध्वस्त कर काम भी अपना प्रभाव जमाना चाहता है। भगवान् श्रीकृष्ण के शब्द में –धर्म को ध्वसत कर काम भी अपना प्रभाव जमाना चाहता है। भगवान् श्रीकृष्ण के शब्द में 'धर्म से अविरूद्ध काम' भगवान् की ही विभूति है। कालिदास ने अपने काव्यों तथा नाटकों में 'धर्माविरूद्ध: कामोऽस्मि लोकेषु भरतवर्षभ' इस गीतावाक्य की सत्यता अनेक प्रकार से प्रमाणिता की है।

मदनदहन का रहस्य यही है। मदन चाहता था कि पार्वती के सुन्दर रूप का आश्रय लेकर समाधिनिरत शंकर के हृदय पर चोट करें। प्रकृति में वसन्त का आगमन होता है। लता वृक्ष पर झूल-झूल कर अपना प्रेम जताने लगती है। एक ही कुसुमपात्र में भ्रमरी अपने सहचर के साथ मधु पान करती हुई मत्त हो जाती है। व्याधि के समान मदन संसार को त्रस्त करने लगता है। वह अपनी आकांक्षा बढाता है और शंकर पर आक्रमण कर बैठता है। जगत् के कल्याण, आत्यन्तिक मंगल का ही तो नाम 'शंकर' है। विश्व का कल्याण मदन की उपासना में नहीं है, प्रत्युत उसके धर्मविरोधी रूप के दबाने में है। काम अपनी प्रभुता चाहता है। विश्व-कल्याण पर अपना मोहन बाण छोड़ता है। शंकर अपना तृतीय नेत्र खोलते हैं। तृतीय नेत्र 'ज्ञाननेत्र' है, जो प्रत्येक मनुष्य के भ्रूमध्य में विद्यमान है, परन्तु सुप्त

होने से हमे उसके अस्तित्व का पता चलता। शंकर का वह नेत्र जाग्रत है। इसी ज्ञान की ज्वाला में मदन का दहन होता है। धर्म से विरोधवाला काम भस्म की राशि बन जाता है। शंकर को वश में करने के लिये पार्वती तपस्या करती है जो धर्मसिद्धिका प्रधान साधन है। विना अपना शरीर तपाये तथा विना हृदय-स्थित दुर्वासना को जलाये धर्म की भावना जाग्रत नहीं होती। कालिदास ने काम का जलना दिखाकर यही चिरन्तन तथ्य प्रकट किया। पार्वती ने घोर तपस्या कर अपना अभीष्ट प्राप्त किया। इस प्रकार कालिदास की दृष्टि में काम तथा धर्म के परस्पर संघर्ष में हमें काम को दबा कर उसे धर्मानुकूल बनाना ही पड़ेगा। जगत् का कल्याण इसी साधना में सिद्ध होता है।

व्यक्ति तथा समाज का गहरा सम्बन्ध है। व्यक्ति की उन्नति वांछनीय वस्तु है, परन्तु इसकी वास्तविक स्थिति समाज की उन्नति पर अवलम्बित है। व्यक्तियों के समुदाय का ही नाम 'समाज' है। कालिदास वैयक्तिक उन्नति के पक्षपाती हैं। उनका समाज श्रुतिस्मृति के आधार पर निर्मितसमाज है। वह त्याग के लिये धन इकट्ठा करता है। सत्य के लिये परिमित भाषण करता है। यश के लिये विजय की अभिलाषा रखता है, प्राणियों तथा राष्ट्रों को पददलित करने के लिये नहीं। गृहस्थी में निरत होता है सन्तान उत्पन्न करने के लिये , कामवासना की पूर्ति के लिये नहीं। कालिदास द्वारा चित्रित नरपति भारतीय समाज का अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करते हैं। वे शैशव में विद्या का अभ्यास करते हैं, यौवन में विषय के अभिलाषी है; वृद्धावस्था में मुनिवृत्ति धारण कर सारे प्रपंच से मुँह मोड़ कर निवृत्ति-मार्ग के अनुयायी बनते हैं तथा अन्त में योग द्वारा अपना शरीर छोड़कर परम पद में लीन हो जाते हैं। यह आदर्श भारतीय समाज की अपनी विशेषता है(रघु0 1/7-8)—

त्यागाय संभ्रतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम्।
यशसे विजिगीषुणां प्रजायै गृहमेधिनाम॥
शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम॥

यज्ञ - उपनिषदों में धर्म के तीन स्कन्ध प्रतिपादित हैं- यज्ञ, अध्ययन और दान। इनके अतिरिक्त 'तप:' की महिमा से भारतीय धार्मिक साहित्य भरा पड़ा है। कालिदास ने इन स्कन्धों का विवेचन स्थान-स्थान पर बड़ी ही मनोरम भाषा में किया है। यज्ञ का महत्व वे स्वीकार करते हैं। पुरोहित यज्ञ के रहस्यों का ज्ञाता होता है। राजा दिलीप यह बात भली-भॉंति जानते हैं कि वसिष्ठ जी के यथाविधि सम्पादित होम द्वारा जल की वृष्टि होती है, जो अकाल से सुखने वाले शस्य को हरा-भरा बनाती है(रघु0 1/62)—

हविरावर्जितं होतस्त्वया विधिवदग्निषु।
वृष्टिर्भवतिशस्यानामवग्रहविशोषिणाम्।

नटराज तथा देवराज- दोनों का काम परस्पर संयोग से मानवों की रक्षा करना है। नरराज पृथ्वी को दुह कर उससे सुन्दर वस्तुएें प्राप्त कर यज्ञ का सम्पादन करता है और देवराज इसके

बदले में शस्य उत्पन्न होने के लिये आकाशसे दुहकर पुष्कल वृष्टि करता है। इस प्रकार ये दोनों शासक अपनी सम्पत्ति का विनिमय कर उभर लोक का कल्याण करते है(रघु0 1/26)

दुदोह गां स यज्ञाय शस्याय मघवा दिवम्।
सम्पद्विनिमयोनोभौ दधतुर्भुवनद्वयम्॥

यज्ञपूत जल के द्वारा अनेक अलौकिक पदार्थो की सिद्धि हमारे महाकवि को मान्य है। उसे वसिष्ठ जी ने मन्त्रपूत जल से अभिमन्त्रित कर दिया है और उसमें आकाश, नदी, पहाड़ आदि विकट तथा विषम मार्गो पर चलने की अपूर्व क्षमता है। इस प्रकार कालिदास की दृष्टि में सामाजिक कल्याण के साधनों मे यज्ञ का भी महत्वपूर्ण स्थान है।

दान-दान की गौरवगाथा गाते हुए हमारे महाकवि कभी श्रान्त नहीं होते । समाज आदान-प्रदान की भित्ति पर अवलम्बित है। धनी-मानी व्यक्ति का संचित धन केवल उन्हीं की आवश्यकता अथवा व्यसन पूरा करने के लिये नहीं है, प्रत्युत उसका सदुपयोग उन निर्धनों की उदर-ज्वाला शान्त करने में भी ।

अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित में रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिये –

1. वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये
   .... वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥
2. या सृष्टि: स्रष्टु राद्या वहति विधिहुतं .... ।
3. उपमा कालिदासस्य ....
   दण्डिन: पद लालित्यं माघे सन्ति त्रयोगुणा:॥

सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिये –

1. शाकुन्तलम का नायक कौन है।
क.नल ख. दुष्यन्त ग. उदयन घ.कोई नही
2. शाकुन्तलम का नायक किस कोटि का है।
क.धीरोदात्त ख. धीरोद्धत ग. धीरललित घ.कोई नही
3. दुष्यन्त किस वंश का राजा था।
क. पुरू ख. सूर्य ग. चन्द्र घ.अग्नि

4.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि साहित्य की भाषा में अद्वय योग रहता है, अभिव्यक्त अलंकार-भाषा का यह समस्त सौन्दर्य-कटककुण्डलावदिवतु कहीं बाहर से जोड़ा हुआ नहीं रहता, प्रत्युत वह काव्यपुरूष का स्वाभाविक देह –धर्म होता है। अभिनव गुप्त ने भी स्पष्ट ही कहा है- 'न तेषां बहिरंगत्वं रसाभिव्यक्तौ'। इस विषय में महाकवि कालिदास भी अद्वयवादी थे:-

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।

जगत: पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ।।

वाक् तथा अर्थ का – काव्य की अन्तर्निहित भाववस्तु एवं उसके अभिव्यन्जक शब्द का परस्पर नित्य सम्बन्ध है, जैसे विश्वसृष्टि के आदि माता-पिता पार्वती-परमेश्वर का त्रिगुणात्मिका शक्ति ही विशुद्ध चिन्मय शिव की विश्व में अभिव्यक्ति का कारण बनती है। शिव के आश्रयविना शक्ति की लीला नहीं, शक्ति के विना शिव का कोई अस्तित्व ही नहीं; वह शवमात्र होता है। साहित्य के क्षेत्र में भी भावरूप महेश्वर एवं शब्दरूपा पार्वती- दोनों ही एक दूसरे के आश्रित हैं। महाकवि कालिदास की उपमा (या अलंकार) के प्रयोग के अवसर पर इस तथ्य का अनुशीलन नितान्त आवश्यक है कि रसानुभति की समग्रता को वर्ण, चित्र तथा संगीत में जो भाषा जितना अधिक मूर्त कर सकेगी, वह भाषा उतनी ही सुन्दर एवं मधुर होगी। कालिदास अपनी उपमा के द्वारा देवता तथा मानव दोनों के गौरव को प्रतिष्ठित करते हैं। समाधि में निरत भूतभावन शंकर की उपमा द्वारा जिस अपूर्व स्तब्धता का परिचय दिया है उसका सौन्दर्य नितान्त अनुपम है। इस प्रकार इस इकाई में वर्णन किये गये तथ्यों के आधार पर आप कालिदास के प्रकृति चित्रण, पात्र चित्रण, चरित्र चित्रण से लेकर भाषा शैली से सम्बद्ध अनेक बातों का अध्ययन कर सम्यक् रूप से कालिदास की नाट्यकला का वर्णन कर सकेंगे।

4.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

रिक्त स्थान की पूर्ति–

1. जगत: पितरौ
2. या हवि: या चहोत्रि
3. भारवे अर्थ गौरवम्

बहुविकल्पीय प्रश्न –

1. **ख. दुष्यन्त** 2. **क.धीरोदात्त** 3. **क. पुरू**

4.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संस्कृत शास्त्रों का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय
2. पुराण विमर्श – आचार्य बलदेव उपाध्याय- चौखम्भा सुरभारती
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ वाचस्पति गैरोला – चौखम्भा प्रकाशन

4.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. महाकवि कालिदास की नाट्य कला पर एक निबन्ध लिखिये ।
2. कालिदास के उपमा प्रयोग काव्य का विस्तृत वर्णन कीजिये।
3. प्रकृति चित्रण की दृष्टि से कालिदास की वर्णन शैली पर निबन्ध लिखिये ।